आत्मतत्त्व का साक्षात्कार

—संघ प्रमुख श्री चन्दन मुनि

जहाँ अध्यात्म की बात उठती है वहीं परमात्मा के साक्षात्कार का प्रश्न उठ खड़ा होता है। परमात्मा क्या है? उसका साक्षात्कार कैसे किया जाय? बिना साक्षात्कार के केवल सुनी हुई बात पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? आज का वैज्ञानिक युग प्रयोगात्मक ज्ञान का युग है। विज्ञान केवल सिद्धान्त नहीं देता उनका प्रैक्टिकल रूप प्रस्तुत करता है। इसलिए आज के मनुष्य को आत्मा-परमात्मा के दर्शन को समझाने में शास्त्रों की दुहाई काम नहीं देती। बिना अनुभव की श्रद्धा स्थिति नहीं पा सकती। भगवान् महावीर की दृष्टि भी प्रयोगात्मक रूप को पुष्टि देती है। वे नहीं कहते कि 'मैं कहता हूँ इसलिए तुम मान लो'। वे कहते हैं 'अप्पणा सच्च मेसेज्जा' तुम अपनी आत्मा से सत्य की खोज शुरु करो, स्वयं सत्य का दर्शन करो। केवल दर्शन नहीं सम्यग्-दर्शन करो, फिर सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चरित्र को विकसित करो। सम्यक्-दर्शन ही शब्दान्तर से साक्षात्कार का द्योतक है।

आमतौर पर जैन लोग सम्यग्दर्शन को श्रद्धा से जोड़ते हैं पर वास्तव में थोड़ा-सा फर्क है। श्रद्धा पैदा की नहीं जा सकती, सम्यग्दर्शन सम्यक्-अवलोकन के कारण स्वयं उत्पन्न हो जाती है। उसे थोपा नहीं जा सकता वह स्वतः उद्भूत हो जाती है। वह सम्यग्दर्शन की परिणति है। हाँ, तो प्रश्न यह है कि आत्म-साक्षात्कार कैसे किया जाय? इसी विषय पर दिगम्बर-आम्नाय के उज्ज्वल नक्षत्र पूज्यपाद स्वामी 'समाधिशतक' में लिखते हैं—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य, स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति, तत् तत्त्वं परमात्मनः॥
—सं० श० ३०

सभी इन्द्रियों का संयम करके स्तिमित—शान्त, निर्विकल्प अन्तरात्मा के द्वारा क्षणभर देखने वाले को जो भासित होता है वही परमात्मा-तत्त्व है। यानि वह परमात्मा तत्त्व की ही झलक है।

तात्पर्य यह है कि जब कर्णादि इन्द्रियों को संयमित करके, शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शादि से ध्यान हटाकर अन्तर्मुखी बनते हैं तब किसकी झलक भासित होती है? वह क्या है? इंद्रियां, मन शान्त है, पूर्ण निर्विकल्प स्थिति है वह आत्मतत्त्व है। उस शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार ही परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार है। जब तक हम शब्द-रूप आदि इन्द्रियों के विषयों पर ही अटके रहते हैं उनका ही ध्यान है, उनका ही चिन्तन है, उनकी ही अभिलाषा है, उनका ही आकर्षण है फिर आत्मदर्शन की कैसे आशा की जा सकती है? इस तत्त्व को तो बड़ी गहराई से पकड़ा जा सकता है, दूसरे व्यापारों को रोककर ही इसे देखा जा सकता है। आद्यशंकराचार्य ने 'विवेक चूड़ामणि' में आत्मदर्शन का उपाय बतलाते हुए कहा है :

नष्टे पूर्व विकल्पे तु, यावदन्यस्य नोदयः।
निर्विकल्पिक चैतन्यं, तावत्स्पष्टं विभासते॥

पूर्व विकल्प के नष्ट हो जाने पर जब तक दूसरा विकल्प उदित नहीं होता, इसके बीच जो एक सूक्ष्म समय है उसमें निर्विकल्पिक चैतन्य का स्पष्ट आभास मिलता है।

अर्थात् एक विकल्प आया और चला गया, दूसरा विकल्प अभी पैदा नहीं हुआ, उसके बीच की जो स्थिति है वह किसकी है? केवल साक्षीभाव से देखनेवाला ही उसे पकड़ सकता है। वे आत्म-दर्शन के क्षण होते हैं। एक माला का एक मनका जैसे आगे खिसका, दूसरा मनका जब तक उस मनके से संलग्न नहीं हुआ, उन दो मणकों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीच जो थोड़ा-सा धागे का दर्शन हो जाता है उसी भांति उठते हुए विकल्पों के बीच आत्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। आप पूछ सकते हैं कि क्या दिखाई देगा ? आत्मा का क्या स्वरूप होगा ? लेकिन जो स्थिति चक्षुगोचर नहीं है उसे शब्दों में कैसे बांधा जायेगा ? परन्तु 'कुछ है अवश्य' इतना तो बोध होगा ही ! वही चिदानन्द रूप आत्मा है उसका संपूर्ण निर्लिप्त स्वरूप परमात्मा नाम से अभिहित होता है।

उपनिषदों में एक कहानी आती है। दक्ष प्रजापति के पास विरोचन इन्द्र जिज्ञासा लेकर आता है, पूछता है कि मैं कौन हूँ ? आत्मा क्या है ? प्रजापति ने कहा—यहां पास ही एक सरोवर है। जब सारी लहरें सो जाएं, पानी बिलकुल शान्त हो तब उसमें अनिमेष पलकों से झांककर देखो, फिर मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा। विरोचन सरोवर के किनारे पहुँचता है, शान्त सरोवर में अपलक दृष्टि से झांक कर देखता है तो अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट नजर आता है। झांकते-झांकते एक प्रश्न और उपस्थित हो गया। प्रजापति से जाकर पूछने लगा—दिखने वाला मैं हूँ या देखने वाला मैं हूँ ? मैं तो दुविधा में पड़ गया हूँ। प्रजापति ने कहा—बस, यही मौलिक प्रश्न है। दृश्य को तो हम पकड़ते हैं पर द्रष्टा को नहीं पकड़ पाते। शब्द को हम पकड़ते हैं पर सुनने वाले को हम नहीं पकड़ पाते वैसे ही गन्ध को हम पकड़ते हैं पर घ्राता को हम नहीं पकड़ पाते। यही बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दृष्टि का भेद है। दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाना होगा। तभी आत्मा का भान हो सकता है। एक जन्म नहीं अनन्तानंत जन्म व्यतीत हो चुके हैं पर जिसे पकड़ना था उसे नहीं पकड़ पाए। उद्धार कैसे हो सकता है ?

रूपक की भाषा में ऋषि कहते हैं—एक महल के पांच झांकियां हैं, पांच रोशनदान हैं, उस महल में एक व्यक्ति बैठा है। वह कभी इस रोशनदान से झाँकता है कभी उस रोशनदान से झांकता है पर झांकने वाला वह एक ही है। उसी भांति इस शरीर रूपी मंदिर में एक ही चेतनतत्त्व है। वह कभी कानों से सुनता है, कभी आंखों से देखता है, कभी गन्ध-रस-स्पर्शादि का अनुभव करता है, पर खेद है कि उस एक को हम जान नहीं पाते, पहचान नहीं पाते, पकड़ नहीं पाते। उस एक के जाते ही बोलना, चलना, चखना, सूंघना—आदि सारी क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। इससे अधिक आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण और क्या हो सकता है ! आत्म-दर्शन के लिए राग-द्वेषादि कल्लोलों को शान्त करना आवश्यक है। आचार्य कहते हैं—

रागद्वेषादिकल्लोलैऽलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं यत्तत्वं नेतरो जनः॥

—समाधिशतक श्लो० ३५

राग-द्वेषादि रूप कल्लोलों से जिसका मन अलोल है—चंचल नहीं है वह आत्मतत्त्व का दर्शन कर सकता है इतर-जन उसका दर्शन नहीं कर पाता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org